समयसार ४९ गाथा। अव्यक्त का छठा बोल है न? सूक्ष्म अधिकार है। अव्यक्त के पाँच बोल चले हैं। अव्यक्त अर्थात् क्या? कि एक तो यह कि छह द्रव्यस्वरूप जो जगत-लोक है, वह ज्ञेय है, वह व्यक्त है; उससे भगवान आत्मा भिन्न-अव्यक्त है। वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा!

श्रोता : छह में स्वयं नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसमें नहीं आया। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, तब भगवान आत्मा ज्ञायक है। यह (भगवान), हों! छह द्रव्यस्वरूप (लोक) व्यक्त है, तब यह आत्मा अन्दर अव्यक्त-भिन्न है, उसे अव्यक्त दर्शन का विषय अभी कहने में आता है। आहाहा!

श्रोता : छह द्रव्य कहा, उसमें यह आत्मा नहीं आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस लोकालोक में यह सप्तम। नहीं... नहीं... सप्तम हो जाता है। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। कहा था, यह बात आ गयी है। आहाहा! एक ओर भगवान ज्ञायकस्वरूप और एक ओर उसकी पर्याय में छह द्रव्य आदि जाने, वह सब छह द्रव्य को जानना, उस समय की पर्याय वह सब ज्ञेय और व्यक्त में जाते हैं। (यह सब) प्रगट है बाहर। आहाहा! अन्तर तत्त्व जो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व है, वह आत्मा! ऐसा यहाँ तो कहने में आया है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह बात तो आ गयी है।

दूसरा बोल—कषायें जो पुण्य और पाप के विकारभाव हैं, वे भावक जो कर्म है, उसका वह भाव है; वह आत्मा का स्वभाव नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह भावक का भाव है। कर्म है, उसमें से निमित्त हुआ विकार, वह उसका भाव है। उससे भगवान आत्मा भिन्न है, आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज है और कैसे हो ? इसका इसे पता ही नहीं है। दो (बोल हुए)।

तीसरा, **चित्सामान्य में...** चित्-ज्ञायकस्वरूप जो सामान्य है। आहाहा! उसमें **चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ निमग्न (अन्तर्भूत) हैं,...** भगवान आत्मा ज्ञायक जो सामान्य, जो ध्रुव, जो असल एकरूप है, उसमें ज्ञानादि अनन्त गुण की भूत और भविष्य की जो व्यक्त पर्यायें, वे सब अन्तर्मग्न हैं। आहाहा! ये बाह्य प्रगट जो अनन्त पर्यायें हैं, एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें प्रगट / व्यक्त हैं, उनसे भी वह भगवान भिन्न है। आहाहा! यहाँ तो यह पूर्व / भूत और भविष्य की जितनी अनन्त पर्यायें हो गयीं, वे सब वर्तमान ज्ञायक में अन्तर्मग्न हैं। अब यह वर्तमान पर्याय रही, वह उसका निर्णय करती है परन्तु वह वर्तमान पर्याय जो है, वह भी अन्तर में नहीं, द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसा (समझने को) निवृत्ति कहाँ है ?

दुःख के पंथ में अनादि से दौड़ रहा है, यह शुभ और अशुभभाव मेरे और यह सबको कर्तव्य करता हूँ, कर सकता हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह तो अनादि दुःख के पंथ में दौड़ा हुआ है। आहाहा! जिसे सुख के पंथ में जाना हो तो वह क्या है ? क्या रास्ता है ? कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा एकरूप वस्तु जो चैतन्य है, उसमें भूत और भविष्य

की पर्यायें अन्तर्मग्न हैं और वर्तमान पर्याय उसका निर्णय करती है। आहाहा! वह सुख का पंथ है। आहाहा! ऐसी बात है। यह सब अपने आ गया है।

चौथा, **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं है,...** एक समय की पर्याय जो व्यक्त है, उतना भी आत्मा नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन की पर्याय जो त्रिकाल को प्रतीति करती है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय क्षणिक है, वह उसमें नहीं। उससे भिन्न भगवान है। आहाहा! सुनायी देता है? थोड़ा-थोड़ा। यह अभी वह होती है न - आवाज होती है न वहाँ, इसलिए पूछा।

क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं... क्या शैली! जो पर्याय जिसका निर्णय करती है, जो सम्यग्दर्शन की पर्याय व्यक्त है, वह उसका-अखण्ड आनन्दकन्द का निर्णय करती है परन्तु वह उतनी मात्र व्यक्तिमात्र आत्मा नहीं है। आहाहा! भगवान तो उससे भिन्न अखण्ड आनन्दकन्द है। आहाहा! यह तो अपने आ गया है।

पाँचवाँ—प्रगट पर्याय और अव्यक्त द्रव्य, दोनों का एक साथ ज्ञान होने पर भी वह व्यक्तपने को स्पर्शता नहीं है। वर्तमान जो पर्याय प्रगट है और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप द्रव्य अप्रगट अर्थात् पर्याय की अपेक्षा से अप्रगट है, पर्याय में नहीं आया; वस्तु की अपेक्षा से प्रगट है। ऐसा व्यक्त जो पर्याय और अव्यक्त जो द्रव्य, उसका एकसाथ ज्ञान होने पर भी वह द्रव्य जो है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें, आहाहा! समझ में आया?

आत्मा शरीर, वाणी, कर्म को तो स्पर्श नहीं करता। दूसरे सभी पदार्थ हैं, उन्हें स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं; भिन्न है परन्तु यहाँ तो अब ऐसा कहते हैं कि इसकी जो पर्याय है, निर्मल व्यक्त पर्याय जो है, सुख के पंथ की जो (पर्याय) प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि व्यक्त पर्याय है और वस्तु अव्यक्त पूर्ण है, दोनों का एकसाथ ज्ञान होने पर भी यह द्रव्य अव्यक्त है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? यह पाँच बोल तो आ गये हैं। आज तो छठवाँ है। पाँच का विस्तार हो गया है, यह तो दस मिनिट में दोहराया है।

अब, **स्वयं अपने से ही बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** भगवान आत्मा स्वयं अपने से, पर की अपेक्षा बिना, राग और निमित्त की अपेक्षा बिना स्वयं स्वयं से ही बाह्य अर्थात् व्यक्त पर्याय और अभ्यन्तर अन्तर्तत्त्व भगवान परमात्म तत्त्व... आहाहा!

एक समय की पर्याय, वह बाह्य तत्त्व। आहाहा! और त्रिकाली वस्तु है, वह अभ्यन्तर तत्त्व। आहाहा! इसे **स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** साधक को पर्याय का और द्रव्य का दो का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी... आहाहा! **व्यक्तता के प्रति उदासीन...** पर्याय में उसकी दृष्टि टिकती नहीं। साधक की दृष्टि पर्याय में टिकती नहीं। दृष्टि द्रव्य त्रिकाली पर है। आहाहा! सूक्ष्म बहुत, बापू! वीतरागमार्ग ही कोई अलौकिक है। अभी तो बाह्य प्रवृत्ति में लोगों ने मनवा लिया गया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि की पर्याय जो प्रगट है... साधक की बात है न यहाँ? यह पर्याय है, वह व्यक्त है। आहाहा! वह बाह्य है और अन्तर्तत्त्व जो ज्ञायक त्रिकाली है, वह अभ्यन्तर है। इन दो का स्पष्ट अनुभव, दो का प्रत्यक्ष अनुभव साधक को है। धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! धर्मी जिसे कहते हैं, सम्यग्दृष्टि कहते हैं, ज्ञानी कहते हैं, उसे वर्तमान पर्याय और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप दो का एकसाथ अनुभव होने पर भी... पहले में तो ऐसा कहा था कि दो का एकसाथ ज्ञान होने पर भी, वह आत्मा पर्याय को स्पर्शता नहीं। अब, यहाँ ऐसा कहते हैं कि व्यक्त जो बाह्य पर्याय और अभ्यन्तर तत्त्व जो ज्ञायक पूर्णानन्द ध्रुव-दोनों का एक समय में साधक को अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि वहाँ टिकती नहीं, पर्याय पर टिकती नहीं। मनसुखभाई! ऐसा सब सूक्ष्म है। यह कहाँ धन्धे के कारण सूझ कहाँ? निवृत्ति कहाँ? पूरे दिन पाप, २२-२४ घण्टे। धन्धा... धन्धा... धन्धा... निवृत्त होवे तो स्त्री, पुत्र को सम्हालना, अकेला पाप, अकेला पाप, धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं। आहाहा! अब इसमें पुण्य का प्रसंग आवे, तब सुनने का थोड़ा समय रहे। आहाहा! इसमें भी यह तत्त्व क्या है? आहाहा!

बाह्य अर्थात् वर्तमान प्रगट पर्याय। धर्मी जीव को प्रगट पर्याय का अनुभव और अप्रगट अभ्यन्तर तत्त्व का भी अनुभव है। अनुभव शब्द से अनुभव तो पर्याय में है परन्तु ज्ञायक की ओर के झुकाववाली दशा, वह ज्ञायक का भी अनुभव और पर्याय का अनुभव, ऐसा। आहाहा! ऐसा होने पर भी **व्यक्तता के प्रति उदासीनरूप से...** पर्याय के प्रति उसकी दृष्टि टिकती नहीं। टिकती तो ऐसे त्रिकाली पर जाती है। साधक की दृष्टि, समकिती की दृष्टि, वर्तमान प्रगट हुई निर्मल पर्याय का अनुभव होने पर भी और त्रिकाली का अनुभव

होने पर भी साधक की दृष्टि व्यक्तपने टिकती नहीं। दृष्टि वहाँ जाती है द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... ऐसी बातें हैं। आहाहा!

श्रोता : उदासीनता का स्पष्टीकरण करें।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, उदासीन (अर्थात्) उसके प्रति टिकता नहीं। कहा न? वहाँ टिकता नहीं, दृष्टि वहाँ ठहरती नहीं। दृष्टि तो इस ओर ढल गयी है। आहाहा! ऐसी बातें कहाँ है कहीं! अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे होना, यह बाद में। सम्यग्दर्शन है, वह त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव वस्तु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। उसके भी दो प्रकार हैं - एक त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है प्रभु ध्रुव, उसके आश्रय से—उसके अवलम्बन से निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। दूसरी बात है कि एक पर्याय बहिरतत्त्व है और परमात्म अन्तर-अन्तर अभ्यन्तर तत्त्व है, दोनों की श्रद्धा, वह भी व्यवहार समकित है, राग है—ऐसा कहते हैं।

फिर से, यहाँ जो बहिर और अभ्यन्तर कहा न? यह बाह्य पर्याय है और अभ्यन्तर जो तत्त्व है, उसे अनुभवता होने पर भी, पर्याय में दृष्टि नहीं है। दृष्टि का जोर द्रव्य पर है। आहाहा! अब यहाँ बाह्य तत्त्व जो है पर्याय और अभ्यन्तर तत्त्व है ध्रुव; इन दो की श्रद्धा, वह तो अभी विकल्प और राग है। व्यवहार समकित अर्थात् राग है।

तीसरे प्रकार से—ज्ञेय है और ज्ञायक है। परज्ञेय है और स्वज्ञायक है। दोनों की प्रतीति, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है, यह ज्ञानप्रधान कथन है। सूक्ष्म बात है, भाई! ४२ में आता है न? भाई! (प्रवचनसार) २४२, चरणानुयोग। आहाहा! क्या कहते हैं? बापू! जैनधर्म कोई अलौकिक है। आहाहा!

वहाँ ऐसा कहते हैं कि जितने जो ज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञायक स्वयं, इन दो की-ज्ञेय और ज्ञायक की श्रद्धा, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहना। २४२ में कहा न? वह ज्ञानप्रधान कथन है। समझ में आया? ऐसा कहना कि नवतत्त्व की श्रद्धा है, वह सम्यक्। आता है न यह? मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है।) वह ज्ञानप्रधान कथन है। ज्ञायक त्रिकाल और पर्याय दोनों की श्रद्धा, वह ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन का कथन है। यह यहाँ तो पर्याय और द्रव्य की दो की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव होने पर भी दृष्टि पर्याय पर नहीं रहती। आहाहा! यह

सुख का पंथ ! बाकी तो पूरी दुनिया उस दु:ख के पंथ में दौड़ गयी है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

एक ओर ऐसा कहना नवतत्त्व की तत्त्वार्थश्रद्धानं, वह सम्यग्दर्शन। वह तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा से। वह ज्ञानप्रधान कथन है। जो त्रिकाली ज्ञायक है और वर्तमान जो संवर, निर्जरा आदि पर्याय में है, वह सब श्रद्धा है और है एकरूप, भेद नहीं; अत: वह तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, वह भी ज्ञानप्रधान दर्शन की व्याख्या है और यहाँ अकेला ज्ञायकभाव जो अव्यक्त है और व्यक्त है इन दो का अनुभव होने पर भी, दृष्टि तो द्रव्य पर झुक गयी है। आहाहा !

श्रोता : यह किसका कथन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दर्शनप्रधान कथन है। और नियमसार में तो ऐसा कहा कि ज्ञेयतत्त्व, बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व दो की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है और २४२ में कहा कि ज्ञेयतत्त्व और ज्ञायकतत्त्व का दो का श्रद्धान, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! ज्ञानप्रधान कथन में वह है। ज्ञान तो सब जानता है न ? दर्शन में तो निर्विकल्पता है; इसलिए दर्शन में तो त्रिकाली ज्ञायक को ही दृष्टि में लिया है। आहाहा ! ऐसी बातें अब। समझ में आया ?

यह तो छठा बोल आया न ? बाह्य-अभ्यन्तर दो आये तो बाह्य अर्थात् पर्याय / व्यक्त, वह बाह्य है। निर्मल पर्याय, हों ! वह बाह्य है और अभ्यन्तर त्रिकाली ज्ञायकध्रुव आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप है, दो का एक समय में साधक को अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि पर्याय के अनुभव की ओर टिकती नहीं। द्रव्य के ऊपर है। आहाहा ! समझ में आया ? चिमनभाई ! ऐसी बातें हैं। आहाहा !

यह नये वर्ष की आज दूज है। बापू ! वीतरागमार्ग कोई अलग है। आहाहा ! अरेरे ! इसे सत्य है, वह सुनने को मिलता नहीं, वह कब विचार करे और कब माने ? आहाहा ! उसके परिभ्रमण का अन्त कब आवे ? आहाहा ! चौरासी का अवतार कर-करके... करके दु:खी है यह। महादु:ख के पर्वत में धँसता है, सन्निपातिया है अर्थात् वहाँ प्रसन्न होता है। हम ठीक हैं, हम सुखी हैं... धूल ! सन्निपाति है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र तीन का सन्निपात हो गया है। आहाहा !

श्रोता : पूरा जगत सन्निपात में पड़ा है!

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा जगत सन्निपात में पड़ा है। आहाहा!

जैन वाड़ा में भी जो कुछ राग को अपना माने और एक समय की पर्याय जितना भी आत्मा को माने, वह भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आये उतना समझो, प्रभु! वीतराग का मार्ग महागम्भीर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

तीन बातें कीं। एक तो यहाँ ऐसा कहा कि निर्मल पर्याय व्यक्त है। साधक की बात है न यहाँ? सम्यग्दर्शन, त्रिकाली ज्ञायक है उसे अनुभव में लिया है। पर्यायदृष्टि छोड़कर, रागदृष्टि छोड़कर, निमित्तदृष्टि छोड़कर, और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को सम्यग्दर्शन में अपनेरूप से मानने का, सत्ता का स्वीकार हो गया है। आहाहा! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निश्चय-सम्यग्दर्शन। तथापि यहाँ कहते हैं कि पर्याय में निर्मलता प्रगट हुई है, उसका भी धर्मी को अनुभव है और ज्ञायक की ओर का लक्ष्य है, इसलिए उसका भी अनुभव है। अनुभव तो पर्याय है परन्तु उसकी ओर के जो जोरवाली पर्याय है, उसका भी अनुभव है, पर्याय का अनुभव है। यह दोनों का अनुभव होने पर भी धर्मी की दृष्टि पर्याय से उदास है। आहाहा! ऐसी बातें! यह तो (अज्ञानी तो) यह करो और यह करो। यह व्रत करो और अपवास करो, प्रतिमा लो... मर गया ले-लेकर। आहाहा!

तीन लोक का नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग की यह वाणी है। इस वाणी को सन्त स्पष्ट करके जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, ऐसा कहते हैं, भाई! तुझे तेरा सम्यग्दर्शन-सुख का पंथ कब हो? कि तेरी दृष्टि निमित्त से उठकर, राग के—दया, दान के विकल्प से दृष्टि उठकर, एक समय की पर्याय से दृष्टि उठकर... आहाहा! त्रिकाली चैतन्य ज्योत भगवान परमानन्दस्वरूप है, ऐसा जिनेश्वर की पुकार है। उसकी दृष्टि करने से उसे पर्याय में आनन्द का स्वाद आवे। यहाँ अनुभवना कहना है न? वह स्वाद आवे, उसे अनुभव करे और त्रिकाली वस्तु को भी लक्ष्य में ली है; इसलिए उसे भी अनुभव करे - ऐसा कहने में आता है। यह दोनों का अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि वर्तमान पर्याय के अनुभव पर टिकती नहीं। आहाहा! तीन लोक का नाथ ज्ञायकभाव मैं हूँ, वहाँ दृष्टि का जोर है। समझ में आया? अनुभव पर भी उसकी दृष्टि का जोर नहीं। ऐसी बातें अब।

भाई! वीतरागमार्ग यह है, भाई! आहाहा! यह कोई साधारण बात नहीं और यह मार्ग ऐसा वीतराग के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र कहीं नहीं है। अरे! कहीं क्या? श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी यह वस्तु नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! कहते हैं, इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती।

साधक जीव तब कहलाता है कि त्रिकाली चैतन्यमूर्ति भगवान पर दृष्टि पड़कर जिसे आत्मा का स्वाद आया है। आहाहा! उस स्वाद को भी अनुभवे और त्रिकाली को भी अनुभवे। क्योंकि लक्ष्य वहाँ है; इसलिए ध्रुव की धारा परिणति में आती है। ध्रुव तो ध्रुव में रहता है परन्तु दृष्टि में ध्रुव का जोर हुआ, इससे मानो ध्रुव का अनुभव है - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान प्रभु महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी हुई है। आहाहा!

श्रोता : यहाँ तो आप....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! आहाहा! हमने तो साक्षात् भगवान के पास सुनी है न!! वह बात है, बापू! क्या कहें? आहाहा!

इसमें तीन बातें कीं। एक तो बाह्य को-पर्याय निर्मल है, उसे बाह्य कहा और त्रिकाली ज्ञायक है, उसे अभ्यन्तर कहा। दोनों का अनुभव पर्याय में होने पर भी, साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय पर टिकती नहीं। वहाँ से उदास होकर द्रव्य पर जोर करती है। आहाहा! अब लोग कहाँ पड़े और कहाँ मानते हैं! कुछ पता नहीं होता। एक बात (हुई)।

नियमसार की पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा कि बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व ऐसा जो परमात्म ज्ञायकस्वरूप भगवान और बाह्य तत्त्व अर्थात् पर्याय, दो की श्रद्धा वह व्यवहार समकित है, निश्चय नहीं। दो आये न? एक नहीं रहा। दूसरी बात —२४२ गाथा में ऐसा कहा कि ज्ञेय और ज्ञायक की श्रद्धा, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। वह ज्ञान की प्रधानता करके ज्ञेय का भी ज्ञान है, ज्ञायक का भी ज्ञान है और उसमें यथार्थ निर्विकल्प प्रतीति होना, उसे सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। वह ज्ञान प्रधान कथन है। आहाहा! तथा नवतत्त्व की तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् जो कहा है, वह भी इस प्रकार से ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा!

वीतराग का मार्ग ऐसा है। आहाहा! एक दिगम्बर धर्म में यह बात है, अन्यत्र कहीं

है नहीं। बापू! परन्तु उसमें जन्मे, उन्हें अभी पता नहीं होता। बाड़ा में जन्मे, ५०-६० वर्ष निकाले तो भी क्या? क्या जैनदर्शन है और क्या समकित है? आहाहा! यह तो पूजा करो, व्रत पालो, और प्रतिमा ले लो। यह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ, उसे सन्त आढ़तिया होकर जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। दिगम्बर सन्त... आहाहा! जिन्हें भावलिंग प्रगट हुआ है, जिन्हें प्रचुर आनन्द का स्वाद है। चौथे गुणस्थान में आनन्द का स्वाद थोड़ा है। जिन्हें सच्चा मुनि कहा जाता है, उन्हें तो अतीन्द्रिय प्रचुर उग्र आनन्द है। आहाहा! ऐसे उग्र आनन्द में रहे हुए प्रभु-सन्तों को यह गाथा या टीका करने का एक विकल्प आया। आहाहा! इस विकल्प के भी वे कर्ता नहीं और टीका के शब्द हैं, उनके वे कर्ता नहीं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की प्रसिद्ध दिव्यध्वनि में यह आया है कि एक समय की पर्याय निर्मल हुई उसे जाने, वेदे; विकल्प को वेदे, तथापि उस साधक की दृष्टि यह अनुभव हुआ और यह पर्याय हुई, उस पर उसका जोर नहीं है। मनसुखभाई! कहाँ वहाँ दुकान में यह सुनने मिले नहीं। उसमें फिर तीनों अलग हुए। ए... मजदूर! आहाहा! शान्तिभाई! यहाँ तो यह बात है, बापू! आहाहा!

अरेरे! जिन्दगी पूरी हो जायेगी। आयुष्य के... मौत के नगाड़े सिर पर बजते हैं। किस समय देह छूट जायेगी एकदम..! आहा! वह पहले कहने नहीं आवे कि अब मैं मृत्यु आती हूँ। देह का संयोग है, वह वस्तु वियोगयोग्य ही है। यह तो एक क्षेत्र में हैं, इसलिए ऐसा कहलाता है। बाकी अभी संयोग है और क्षेत्र से भिन्न पड़ा, तब उसे देह का मरण कहा जाता है। देह छूटा, मरण तो नहीं परमाणु का और मरण नहीं आत्मा का। यह पर्याय का व्यय होता है, इससे इसे मरण कहने में आता है। इससे पहले प्रभु! तू कौन है? आहाहा!

नियमसार में पाँचवीं गाथा में तो वहाँ तक कहा—बहिर्तत्त्व और अन्तर्तत्त्व ऐसा जो परमात्मतत्त्व। बहिर्तत्त्व अर्थात् पर्याय। यह तो ३८ गाथा में आया है न? '**बहित्तच्चं**' '**जीवादिहित्तच्चं**' जीव की एक समय की पर्याय, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! जीव की एक समय की निर्मल पर्याय, संवर-निर्जरा की शुद्ध निर्मल पर्याय, उसे भी प्रभु बहिर्तत्त्व कहते हैं। एक समय की है न? और अन्तर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, उसे परमात्मा

अन्त:तत्त्व कहते हैं। भाषा तो सादी है प्रभु! माल तो है वह है। आहाहा! यह बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व की श्रद्धा, वह भी अभी विकल्प और व्यवहार समकित है। किसे? कि जिसे ज्ञायकस्वभाव की अकेले अनुभव, प्रतीति हुई है, उसे यह बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व की श्रद्धा को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए ये लोग शोर मचावे न? ए..! सोनगढ़वालों ने समकित को महँगा कर दिया है। भाई! महँगा तो भगवान कहते हैं, यह कहीं सोनगढ़ का नहीं है। आहाहा! भाई! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आया वह यह है। आहाहा! भाई! तूने सुना न हो, इसलिए कोई तत्त्व दूसरा हो जायेगा? आहाहा!

दया, दान, भक्ति का व्यवहार समकित का जो विकल्प है, वह तो अशुद्ध बाह्य तत्त्व, वह तो कहीं बाह्य रह गया परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय जो स्व त्रिकाल के अवलम्बन से हुई, उसे भी बाह्य तत्त्व कहा और उसका अनुभव है और अन्तर -अभ्यन्तर तत्त्व का अनुभव है, तथापि साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय में रुकती नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! बहुत लोग आये हैं। आज भी आये हैं। तीन दिन से बहुत लोग आते हैं। यह तो मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! इसका अभी ज्ञान भी सच्चा नहीं, उसे सम्यग्दर्शन होगा कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? ऐसा होने पर भी व्यक्तरूप से उदासीनरूप से अर्थात् पर्याय से उदास है, पर्याय में वहाँ दृष्टि रुकती नहीं है। आहाहा!

श्रोता : उदासीन?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदासीन अर्थात् पर्याय से उदासीन आसन है और द्रव्य पर उसकी दृष्टि है। आहाहा! एक व्यक्ति कहता है कि यह समयसार मैं पन्द्रह दिन में पढ़ गया। बापू! यह समयसार क्या है?

श्रोता : उसके अक्षर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अक्षर, पृष्ठ तो जड़ है परन्तु उनका भाव क्या है? आहाहा! यह दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य... आहाहा! केवली के मार्गानुसारी, उनका यह पुकार है कि भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! आहाहा!

आहाहा! यह तो जरा उस पर विचार गया न? नियमसार की पाँचवीं गाथा।

बहिर्तत्त्व-अन्तःतत्त्व की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा, विकल्प। आहाहा! और वहाँ २४२ गाथा में ऐसा कहा कि ज्ञेय और ज्ञायक की प्रतीति, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म है)। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला, उसमें जैन सम्प्रदाय में जन्म, उसमें दिगम्बर में जन्म, वह तो पुण्यशाली है; उसे यह दिगम्बर धर्म क्या है, यह उसे जानना चाहिए। भाई! आहाहा!

इसलिए अव्यक्त है। है? यह तो एक अन्तिम बोल का सब अर्थ चला है। भगवान आत्मा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वर्तमान पर्याय प्रगट है, उसका-पर्याय का भी अनुभव है और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप का भी अनुभव है। ध्रुव तो ध्रुव है। अनुभव, ध्रुव का नहीं होता; अनुभव तो पर्याय है परन्तु ध्रुव के ओर की जोरवाली पर्याय है, उसे ध्रुव का अनुभव कहते हैं और पर्याय का अनुभव है, वह वेदन पर्याय का कहते हैं। आहाहा! कितनी अपेक्षा आवे इसमें! आहाहा! सोमचन्दभाई! ऐसा यह स्वरूप है। आहाहा! क्या कहें?

श्रोता : पर्याय ऊपर की दृष्टि हटाकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि पर्याय है वह एक समयमात्र की है। विकार है, वह तो भिन्न परन्तु निर्मल पर्याय है, वह एक समय की है और इसलिए वह नाशवान है। शुद्धपर्याय, धर्मपर्याय, मोक्ष के मार्ग की पर्याय। आहाहा! उसका वेदन हो और त्रिकाली ज्ञायक का भी वेदन हो, तथापि उस ज्ञायक-धर्मी-साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय पर टिकती नहीं। ऐसे अन्दर में गुलाँट खाती है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव पर जिसकी दृष्टि का जोर है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? दूसरे को कितना लगे कि यह क्या है? यह क्या जैनधर्म ऐसा होगा? ए बापू! जैनधर्म कोई पंथ नहीं, जैनधर्म कोई पक्ष नहीं; जैनधर्म वस्तु का स्वरूप है, वह जैनधर्म है। आहाहा!

'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' 'घट घट अन्तर जिन बसै और घट घट अन्तर जैन।' 'घट घट अन्तर जिन बसै।' भगवान जिन अन्दर घट-घट में विराजमान है। वस्तु द्रव्यस्वभाव, वह जिनस्वरूप है। 'घट घट अन्तर जिन बसै और घट घट अन्तर जैन।' उस जिनस्वरूप की जो प्रतीति, अनुभव होकर होती है, उसे जैन कहने में आता है। वह कोई पक्ष नहीं वह तो वस्तु का

स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह छह बोल हुए। एक अव्यक्त के छह बोल हैं। कल अपने तीन चले थे, परसों के दिन दो चले थे और आज इस एक में यह सब (चला है)।

इस प्रकार... अब तीसरी लाईन है न? **इस प्रकार रस,...** भगवान रसरहित है, यह आ गया है। छह बोल, एक-एक के छह बोल। **रूप,...** रहित। गन्धरहित, स्पर्शरहित, शब्दरहित। शब्द की पर्यायरहित भगवान है-आत्मा (है)। संस्थानरहित और **व्यक्तता का अभाव...** अर्थात् यह अव्यक्त। ऐसा **होने पर भी स्वसंवेदन के बल से...** आहाहा! अपने स्व अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, उसका संवेदन-वेदन के बल से **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** आहाहा! ऐसे छह-छह बोल से निषेध करते आये हैं परन्तु फिर भी कहते हैं कि अब अस्तित्व तो कितना है यह?

रस आदि का **अभाव होने पर भी स्वसंवेदन के बल से...** आनन्द का वेदन अन्दर होता है। आहाहा! स्व अर्थात् अपना, वेदन अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन। आहाहा! अतीन्द्रिय श्रद्धा सम्यग्दर्शन का वेदन आदि **स्वसंवेदन के बल से स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** वह तो सदा प्रत्यक्ष है। आहाहा! चैतन्य के तेज के नूर का पूर... भगवान चैतन्य के नूर के तेज का पूर सदा प्रत्यक्ष पड़ा है। तेरी नजर वहाँ गयी नहीं। आहाहा! आहाहा!

बहिन के शब्दों में आया न पहला बोल? बहिन के वचनामृत। जागता जीव खड़ा है न, वह कहाँ जाये? क्या कहा इसमें? वचनामृत पढ़ा है सोमचन्दभाई? पढ़ा या नहीं? एक बार? अभी तो वचनामृत चारों ओर हिन्दुस्तान में (पहुँच गया है) और 'जालना' है 'जालना', वहाँ बीस वर्ष की दीक्षावाला दिगम्बर साधु है 'भव्यसागर' (नाम है)। यह पढ़कर पहले मेरा एक आया था (वह कहे) स्वामीजी! यह तुमने क्या किया? दो सौ वर्ष में यह बात नहीं थी, तुमने यह कहाँ से निकाली? बीस वर्ष की दीक्षा है, शीघ्र कवि है। यहाँ आने को बहुत चाहता है मुझे बुलाओ... बुलाओ... बापू! हम तो किसी को बुलाते नहीं। बहुत साधु आना चाहते हैं। यहाँ यह उपाधि कौन करे? आकर कहाँ उन्हें स्थान (देना)? उन्हें भोजन का (क्या)? कौन उपाधि करे?

वह तो स्वयं भव्यसागर (ने) बहिन की पुस्तक सात सौ मँगायी है। सात सौ, यह बड़े हैं न? सबको देते हैं, बाँटते हैं। वहाँ एक स्थानकवासी साधु है, बड़ा आचार्य है 'आनन्दऋषि' नाम से। स्थानकवासी का बड़ा, उसे पैर लगने हजारों लोग आते हैं। वे सब इनके पास आते हैं और यह वचनामृत का नाम बाहर प्रसिद्ध हो गया है न! वह सब माँगते हैं। स्थानकवासी माँगते हैं कि हमें वचनामृत दो। यह कहते हैं मैं उन्हें बीस मिनिट की (स्वाध्याय की) शर्त पर देता हूँ कि बीस मिनिट हमेशा पढ़ना। जालना है न? वहाँ महाराष्ट्र में। चारों ओर बहुत प्रचार हुआ। अब यह तो लन्दन में इसका प्रचार है न? वाँचन चलता है। अफ्रीका में तो यह बड़ा पन्द्रह लाख का मन्दिर हुआ है न? इस ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस, पन्द्रह लाख का (मन्दिर का) मुहूर्त किया है। लगभग डेढ़ वर्ष में तैयार होगा। अफ्रीका में दो हजार वर्ष से वहाँ कोई दिगम्बर मन्दिर नहीं था, दिगम्बर मन्दिर। वे यह भाई, यह बैठे नहीं, देखो न! ये सब गृहस्थ। अजितभाई! पैसेवाले, साठ-सत्तर लाख रुपये हैं। ऐसे तो बहुत अपने साठ घर हैं। सब श्वेताम्बर (से) दिगम्बर हो गये और पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया है। बापू! यह तो परमात्मा का मार्ग त्रिकाल सत्य है भाई! इसे पहले जानों तो सही! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि अपने स्वसंवेदन के बल से। देखा? **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** ऐसा। राग के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं। आहाहा! देव-गुरु की सहायता के कारण नहीं। **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** भगवान चैतन्य ज्योति, मति और श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ, तब सदा प्रत्यक्ष यह था। आहाहा! है? यह तो अध्यात्म टीका है, भाई! यह कोई कथा-वार्ता नहीं। यह तो भगवत्स्वरूप भगवान आत्मा की भागवत कथा है। वे भागवत कथा कहते हैं, वह अलग है। यह तो सम्यक् भागवत कथा है। आहाहा!

सदा प्रत्यक्ष... इतने शब्दों में बहुत डाला है। इसका अभाव होने पर भी-व्यक्तता का अभाव होने पर भी, अब प्रत्यक्ष अस्ति कहते हैं। स्वसंवेदन के बल से। आहाहा! यह ज्ञान और आनन्द का वर्तमान स्व का वेदन, उसके बल से स्वयं सदा-सदा प्रत्यक्ष है। वर्तमान प्रत्यक्ष हुआ तो वह वस्तु सदा प्रत्यक्ष ही थी। आहाहा!

अरे! मृत्यु के पहले यदि यह बात नहीं जाने, नहीं करे (तो) भाई! कहाँ जायेगा?

आहाहा! इस आँधी का तिनका उड़कर कहाँ पड़ेगा? इसी प्रकार जिसे मिथ्यात्वभाव पड़ा है... आहाहा! वह उड़कर किस भव में कहाँ जायेगा? आहाहा! इसलिए इस भव में इसे अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ करके बाहर से निवृत्ति लेकर इसका इसे निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा! दुनिया माने, न माने; महिमा करे न महिमा करे... दुनिया कहे बिना भान का है। लो, आत्मा-आत्मा करता है। कहो, दुनिया... आहाहा!

यहाँ कहते हैं **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** आहाहा! **अनुमानगोचरमात्रता के अभाव...** क्या कहते हैं? कि ज्ञान वहाँ आत्मा और आत्मा वहाँ ज्ञान - ऐसा जो अनुमान, उसका भी यहाँ तो अभाव है। व्यक्तपने का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अनुमानगोचरमात्रता के अभाव...** है। अनुमान से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है नहीं। समझ में आया? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो ऐसा आया है, अनुमान किया इसका फिर अनुभव करता है। ऐसे पाँच अंग वर्णन किये हैं न? पता है। आगम आदि पाँच। वह तो पहले अनुमान किया है, वह अनुमान तो व्यवहार है। यह ज्ञान वह आत्मा और आत्मा वह ज्ञान, ऐसा। पश्चात् अन्दर प्रत्यक्ष होता है, तब अनुमान को व्यवहार कहने में आता है। उससे हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप! जिनेश्वर तीन लोक के नाथ का पंथ अलौकिक है। प्रथम सम्यग्दर्शन का पंथ ही अलौकिक है। चारित्र तो बाद में। अभी वह चारित्र तो कहाँ है? बापू! समझ में आया?

अनुमानगोचरमात्रता के अभाव... अर्थात् अनुमान, अकेला अनुमानमात्र नहीं - ऐसा कहते हैं। अनुमान हो, परन्तु अनुमानमात्र नहीं - ऐसा कहते हैं। वह तो प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! ऐसा उपदेश अब। बापू! यह मार्ग है भाई! यह जन्म-मरण के दुःख में खिंच गया है। आहाहा! उससे छूटने का पंथ, प्रभु! एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ! यह एक पंथ है। आहाहा! कहते हैं **(जीव को) अलिंगग्रहण कहा जाता है।** अनुमानगोचर नहीं; इसलिए अलिंगग्रहण, ऐसा। लिंग-अनुमान, लिंग है, उससे जानने में नहीं आता, इसलिए अलिंगग्रहण है। यहाँ संक्षिप्त किया है। प्रवचनसार में अलिंगग्रहण के बीस बोल (हैं)। आहाहा!

अब, **अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण के द्वारा...** आहाहा! जाननेवाला

दूसरे को जाननेवाला परन्तु जाननेवाला तो स्वयं जाननेवाले में है। दूसरे को जानता है, उस काल में भी जाननेवाला जाननेवाले में है। आहाहा! दूसरे को जानता है कि यह है... यह है... यह है... परन्तु यह जाननेवाला जाननेवाले में रहकर जानता है। आहाहा! ऐसा जाननेवाला जाननेवाले में रहकर स्वयं कौन है? इस जाननेवाले को जानना। आहाहा! ज्ञात होता है, उसे जानना नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

चेतनागुण के द्वारा सदा अन्तरंग में प्रकाशमान है... आहाहा! अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण द्वारा। कोई ऐसा कहे कि मुझे मैं नहीं जानता। मुझे मैं नहीं जानता - ऐसा निर्णय किसमें किया? इस चैतन्य सत्ता में निर्णय किया। आहाहा! **चेतनागुण के द्वारा सदा अन्तरंग में...** अन्तरंग, हों! त्रिकाल प्रकाशमान है। **इसलिए (जीव) चेतना -गुणवाला है।** है न? मूल पाठ में यह लिया है। चेतनागुणवाला है। यह तो आत्मा को (कहते हैं), वरना तो वह चेतनास्वरूप ही है। वह तो यह नहीं, इसलिए इस वाला है - ऐसा कहना है। आहाहा!

चेतनागुणवाला है। चेतनागुण कैसा है? जो समस्त विप्रतिपत्तियों को (जीव को अन्य प्रकार से माननेरूप झगड़ों को) नाश करनेवाला है,... जीव को ऐसा मानना कि पर का कर्ता है, रागवाला है, पुण्यवाला है। आहाहा! ये सब चेतनागुण को समझे तो सब झगड़े मिट जाते हैं। आहाहा! वह तो जाननेवाला भगवान है; वह किसी का करनेवाला नहीं है। राग का कर्ता भी चेतनागुण नहीं। चेतनागुण स्व-पर को प्रकाशित करनेवाला भगवान प्रत्यक्ष है। उसे चेतनागुण द्वारा समस्त विप्रतिपत्तियों-विरोध करनेवाले जो भाव, उनके झगड़ों का नाश करनेवाला है। राग, आत्मा; पर, आत्मा; अजीव, आत्मा; पर का कर्ता है-इन सब झगड़ों का चेतनागुण द्वारा नाश होता है। आहाहा! वह तो जाननेवाला-देखनेवाला भगवान चन्द्र शीतल प्रकाश जैसे हैं, वैसे जाननेवाला-देखनेवाला शान्त-प्रशान्त रस का पिण्ड प्रभु है। आहाहा!

जिसने अपना सर्वस्व... आहाहा! किसने? चेतनागुण ने। आहाहा! चेतनागुण ने समस्त **अपना सर्वस्व भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,...** जो कोई राग से भिन्न करते हैं, उन्हें चेतनागुण का सर्वस्व सौंप दिया है। यह चेतना है और यह राग नहीं (ऐसा भेद

करनेवाले) भेदज्ञानियों को इसने सौंप दिया है। चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प हो परन्तु वह आत्मा नहीं। आहाहा। वह तो चेतनागुणवाला भगवान है। भेदज्ञानी-राग से भेद करनेवाले को यह बात सौंप दी है, कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें!

जो समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत करके मानों अत्यन्त तृप्ति से उपशान्त हो गया हो... आहाहा! क्या कहते हैं? चेतनागुण है, वह तो इसकी पर्याय में भी, गुण में भी लोकालोक को जाने और उसकी पर्याय में भी लोकालोक को जाने, साधक की पर्याय... आहाहा! ऐसे चेतनागुण जो लोकालोक को पर्याय से जाने, शक्ति से जाने, दो है। लोकालोक को तो ग्रासीभूत-ग्रास कर जाता है। मुँह बड़ा और ग्रास छोटा। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय की ताकत अनन्त और लोकालोक को ग्रास कर जाता है। आहाहा! आहाहा! त्रिकाली गुण में तो शक्ति है परन्तु त्रिकाली चेतनागुण को जिसने जाना, उसकी पर्याय में भी लोकालोक को ग्रासीभूत कर जाता है। आहाहा! ग्रास छोटा होता है और मुँह बड़ा होता है। इसी प्रकार जाननेवाले की पर्याय लोकालोक को जाने, तथापि पर्याय की ताकत अनन्त गुनी है। आहाहा!

मानों अत्यन्त तृप्ति से उपशान्त हो गया हो इस प्रकार... जैसे लड्डू खाकर ब्राह्मण उपशान्त हो गया हो, वैसे आत्मा की तृप्ति द्वारा तृप्त-तृप्त हो गया। आहाहा! शान्ति और ज्ञान की पर्याय में लोकालोक को जाने, तथापि वह तो ग्रासीभूत कर गया। ऐसी जो ज्ञान की पर्याय और शान्ति की पर्याय हुई... आहाहा! अत्यन्त तृप्ति हो गयी। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को अन्तरपर्याय में तृप्ति हो गयी। मेरा नाथ कृतकृत्य प्रभु पूर्ण है, उसे मैंने जाना, वह पर्याय भी कृतकृत्य होने के योग्य हो गयी। पूर्ण कृतकृत्य केवलज्ञान के लायक हो गयी। आहाहा!

इस प्रकार (अर्थात् अत्यन्त स्वरूप-सौख्य से तृप्त-तृप्त होने के कारण स्वरूप में से बाहर निकलने का अनुद्यमी हो इस प्रकार)... आहाहा! अन्तर के आनन्द के अनुभव में से बाहर निकलना उसे सुहाता नहीं है। **सर्व काल में किंचित्मात्र भी चलायमान नहीं होता और इस तरह...** जरा इसमें जोर दिया है। जो ज्ञानपर्याय प्रगट हुई है, वह अब फिर से चलायमान नहीं होती - ऐसा कहते हैं। ३७ वीं गाथा। **अन्य द्रव्य से असाधारणता होने से जो (असाधारण) स्वभावभूत है।** चेतनागुण।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)